International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN : 2581-9925, Impact Factor: 6.882, Volume 05, No. 03(I), July - September, 2023, pp. 97-100

स्मृति साहित्य में धर्म व राज्यसत्ता के मध्य सम्बन्ध

प्रो. पुष्पा चौधरी*

सार

प्राचीन भारतीय चिंतन में मनु को मानव सभ्यता के प्रवर्तक के रूप में जाना जाता है। पौराणिक आख्यानों में भी मनु परम्परा का उल्लेख मिलता है। वेद, स्मृतियाँ, महाकाव्य एवं नीतिग्रन्थ प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतन के स्त्रोत के रूप में स्वीकार किये जाते रहे हैं। इनमें से स्मृति–साहित्य का विशेष महत्व है। स्मृति साहित्य में भी मनुस्मृति अपना विशेष स्थान रखती है अतः इस लेख में केवल धर्म व राज्यसत्ता के मध्य संबंध के अवधारणात्मक प्रभाव को राज्य के दायित्वों के क्षेत्र व शासन पर नियन्त्रण के संदर्भ में स्पष्ट किया जायेगा। प्राचीन भारतीय चिंतन में धर्म को मानवीय आचरण के रूप में स्वीकार किया गया है। यह व्यक्त किया गया है कि धर्म व्यक्ति व समाज दोनों के लिए उपयोगी है क्योंकि यह व्यक्तिगत आचरण व सामाजिक कर्त्तव्य दोनों का बोध करवाता है। यह व्यक्ति के लौकिक व पारलौकिक विकास का तथा सुनियंत्रित एवं सुव्यवस्थित सामाजिक व्यवस्था का आधार बिन्दू है।

शब्दकोशः *धर्म, ऋत्, लौकिक, पारलौकिक, राज्य, सार्वभौमिक नैतिक मूल्य, व्यावहारिक सूत्र।*

प्रस्तावना

मनुस्मृति मूलतः सामाजिक प्रकृति का ग्रन्थ है तथा इसमें सामाजिक व्यवस्था के सभी पक्षों से सम्बन्धित आचरण के नियमों (आचार संहिता) का संग्रह होने के कारण विषय वस्तु व्यापक है। ग्रन्थ में सामाजिक व्यवस्था को पूर्ण व्यवस्था मानते हुए अन्य महत्वपूर्ण व्यवस्थाओं जैसे आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, नैतिक इत्यादि को उप व्यवस्था के रूप में मान्यता दी गई है। ग्रन्थ 12 अध्यायों में विभाजित है। अध्याय योजना में मानव जीवन के समस्त पक्षों के सार्थक और उद्देश्यपूर्ण नियमन के लिए आचार संहिता प्रस्तावित की गई है।

वैदिक साहित्य से लेकर महाभारत तक धर्म के अर्थ, स्वरूप व क्षेत्र के विषय में अनेकों परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। अतः इस संदर्भ में किसी ने भी मौलिकता का दावा नहीं किया है। वेदों में धर्म को एक ऐसी शक्ति के रूप में परिभाषित किया है जो भौतिक और नैतिक समस्त दृष्टियों से सारी गतिविधियों व क्रियाकलापों के संचालन का मूल आधार है। साथ ही अनेक प्रसंगों में धर्म को विधियों की संहिता तथा आचरण के नियमों के रूप में भी व्यक्त किया गया है। जी.एस.मीस ने धर्म के निम्न अर्थों को सूचीबद्ध किया है[1] –

- धार्मिक कर्त्तव्य व धार्मिक सद्गुण
- अच्छे कृत्य
- दिव्य न्याय
- आदर्श
- प्राचीन शब्द 'ऋत्' के समानार्थक शब्द
- नैतिक दृष्टि से उचित, आध्यात्मिक कर्त्तव्य, सद्गुण
- अन्तिम सत्य के रूप में ईश्वर के समतुल्य
- सामान्य विधि

---

* राजनीति विज्ञान, राजकीय कला महाविद्यालय, सीकर, राजस्थान।

- अन्तर्राष्ट्रीय अथवा अन्तर्जातीय विधि
- वास्तविक एवं आदर्श दशाओं के मध्य समझौता
- अभिसमयों, परम्पराओं और रीतियों की संहिता

मीस के द्वारा दी गई सूची अत्यधिक विविधतापूर्ण व व्यापक है। इसमें धर्म से सम्बन्धित अनेकों सम्भावित अर्थ समाविष्ट है। उपरोक्त सूची में 'ऋत्' के उल्लेख के सम्बन्ध में तथ्य यह है कि वैदिक साहित्य में 'ऋत्' को धर्म के समतुल्य माना गया है। 'ऋत्' एक व्यवस्था का बोध करवाता है तथा प्राकृतिक तत्वों की स्थिर और स्थापित व्यवस्था को व्यक्त करता है। जब यह कहा गया कि 'ऋत्' मनुष्यों और देवताओं दोनों पर समान रूप से बाध्यकारी है तथा 'ऋत्' का उल्लंघन पाप है, तब यह स्पष्ट हो जाता है कि 'ऋत्' शब्द संसार के भौतिक तत्वों की सुस्थिर और नियमित व्यवस्था के साथ–साथ औचित्य के मापदण्डों को भी व्यक्त करता है। वेदों में सूर्य, चन्द्र, अग्नि, ऊषा, वायु, यम, कुबेर, वरूण आदि सभी भौतिक सत्ताओं का देवताओं के रूप में चित्रण किया गया है। ये सत्ताऐं अपनी विशिष्टताओं के कारण जीवन्त तत्वों के रूप में व्यक्त होती है तथा मानव जीवन पर व्यापक नैतिक प्रभाव डालती है।[2]

कालान्तर में 'ऋत्' का महत्व कम होता गया तथा उसका नैतिक महत्व धर्म के साथ जुड़ गया। इस की क्रमबद्धता निर्धारित किया जाना कठिन है किन्तु यह समझा जा सकता है कि वैदिक साहित्य में विधि व अध्यादेश के रूप मे धर्म शब्द का प्रयोग होता था, उसके साथ नैतिकता का संयोग 'ऋत्' के कारण हुआ। यहाँ यह उल्लेख करना आवश्यक है कि धर्म अंग्रेजी शब्द त्मसपहपवद का पर्यायवाची नहीं है। अपितु धर्म की परिधि बहुत व्यापक है। यह मनुष्य के लौकिक आचरण को नियन्त्रित करने की व्यवस्था को भी व्यक्त करता है तथा इसकी सुनिश्चितता के लिए सांसारिक संस्थाओं को उत्तरदायी ठहराया गया है। इस दृष्टि से राज्य वह संस्था है जो धर्म का संरक्षण करेगा। उपनिषदों में धर्म को सर्वोच्च सत्ता के रूप में स्वीकार किया गया है। साथ ही धर्म को सत्य का पर्याय बताया गया है।[3] इससे यह स्पष्ट होता हैं कि धर्म की सहायता से भौतिक रूप से कमजोर व्यक्ति भी शक्तिशाली व्यक्ति पर शासन कर सकता है।

मनुस्मृति के धर्म

मनुस्मृति एक सामाजिक आचार संहिता है जिसमें मानव जीवन के समस्त कार्य व्यहार एवं आचरण के नियमों का संग्रह है। प्राचीन भारतीय चिंतन में समाज एवं व्यक्ति को नियन्त्रित करने के लिए सार्वभौमिक नैतिक नियमों की व्याख्या की गई है। मनुस्मति में इन नैतिक नियमों को धर्म की संज्ञा की गई है।[4]

समस्त कर्त्तव्यों एवं दायित्वों का सम्यक् निर्वहन लौकिक रूप से धर्म के अर्थ को व्यक्त करता है। अतः मनुस्मृति में धर्म के लौकिक व पारलौकिक दोनों पक्षों पर बल दिया गया है। मनु ने व्यक्त किया है कि व्यक्ति के पारलौकिक कल्याण के लिए उसके सांसारिक आचरणों का धर्म के अनुसार संचालन होना चाहिए। धर्म के अनुसार लौकिक आचरण करने पर ही व्यक्ति मोक्ष प्राप्ति कर पारलौकिक कल्याण को प्राप्त कर सकता है। मनुस्मृति में अन्य ग्रन्थों की तुलना में धर्म के पारलौकिक अर्थ को अधिक महत्व प्रदान किया गया है। ग्रन्थ में उल्लेख है कि पारलौकिक कल्याण के लिए सांसारिक कार्यव्यवहार को धर्म के अनुकूल नियमित करना एक अनिवार्य शर्त है। स्त्री, पुत्र, धर्म इत्यादि के प्रति मोह परलोक में कोई सहायता नहीं कर सकते बल्कि व्यक्ति के द्वारा किया धर्मानुकूल व्यवहार ही उसके साथ चलता है। साथ ही एक अन्य प्रसंग में उल्लेख मिलता है कि बन्धु–बान्धव और समस्त सगे सम्बन्धी मृत्यु के साथ ही मुँह फेर लेते हैं, केवल मात्र धर्मानुकूल कर्म ही पीछे चलते हैं।[5] ऐसा प्रतीत होता है कि मनुस्मृति के अनुसार धर्मानुकूल व्यवहार पारलौकिक कल्याण की पृष्ठभूमि तैयार कर देता है। धर्मानुकूल आचरण से ही व्यक्ति जीवन के अंतिम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त कर सकता है जिसे संसार में समस्त जीवों के लिए परम सुख की अवस्था माना गया है। अतः व्यक्ति को सम्पूर्ण जीवनकाल में शनैः शनैः धर्म का संचय करने की सलाह दी गई है। ग्रन्थ में चारों पुरूषार्थों में से अर्थ, काम व धर्म को लौकिक महत्व दिया गया है। तीनों पुरूषार्थो को सिद्ध करके ही मनुष्य अंतिम लक्ष्य 'मोक्ष' को प्राप्त कर सकता है। अतः अर्थ व काम धर्म के अनुसार मर्यादित होने चाहिए ताकि पारलौकिक कल्याण सुनिश्चित किया जा सके।

धर्म व राज्य सत्ता में सम्बन्ध

मनुस्मृति में धर्म की व्यापक परिधि स्वीकार की गई है जिसमें नैतिक मूल्य, सदाचार के शाश्वत नियम, सामाजिक व्यवस्था के आधारभूत नियम तथा प्रजा के कल्याण के प्रति शासक के सकारात्मक दायित्व एवं शासकीय शक्तियों के प्रयोग के समय अपेक्षित मर्यादाऐं आदि को सम्मिलित किया गया है।

मनु ने राज्य की उत्पत्ति के दैवीय सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। मनु के अनुसार जब लोक में शक्तिशाली व बलवान लोग कमजोर व अशक्त लोगों को प्रताड़ित करने लगे तो सर्वत्र अराजकता व्याप्त हो गई। सम्पूर्ण चराचर की रक्षा के लिए ईश्वर ने सृष्टि में विद्यमान देवताओं जैसे इन्द्र, वायु, सूर्य, चन्द्रमा, यम कुबेर, अग्नि, वरुण आदि विशिष्ट गुणों से युक्त एक राजा की रचना की। इन सभी देवों को सृष्टि में किसी एक विशिष्ट गुण के लिए जाना जाता है। इस विशिष्ट गुण को मनु ने 'नित्य सारभूत अंश' नाम दिया। मनु के अनुसार यह राजा दिव्य है अतः संसार का कोई अन्य जीव उसकी शक्ति को चुनौती नहीं दे सकता। ग्रन्थ में स्पष्टतः घोषित किया गया है कि इस राजा में इन्द्रादि सब देवताओं का नित्य अंश समाविष्ट है अतः इसके तेज के सम्मुख कोई प्राणी नहीं ठहर सकता। यद्यपि मनुस्मृति में राजा से धर्म के अनुसार शासन संचालन करने की अपेक्षा की गई है। राजा को धर्म का स्त्रोत माना गया है[7] तथा विभिन्न संदर्भों के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया है कि ईश्वर ने धर्म व राजकीय सत्ता दोनों को एक साथ उत्पन्न किया है। अतः राजा केवल ईश्वर के प्रति उत्तरदायी है, किसी अन्य के प्रति नहीं। स्वयं राजा को धर्म के मापदण्ड निर्धारित करने का अधिकार प्रदान किया गया है। प्रजा पर भी यह प्रतिबन्ध लगा दिया है कि इच्छानुकूल न होन पर भी धर्म का उल्लंघन न किया जाये। ग्रन्थ ने मनुष्य पर राजकीय शक्ति व धर्म दोनों का एक साथ नियन्त्रण आरोपित किया है। राजा को अधिकृत किया गया है कि वह धर्म के अनुकूल प्रजा के आचरण के मापदण्ड निर्धारित करें। तार्किक दृष्टि से मनु ने राजा पर धर्म का नियन्त्रण प्रतिपादित नहीं किया है किन्तु धर्म की व्याख्या करने के अधिकार से राजा धर्म का प्रतिपादक, सर्वोच्च व्याख्याकार एवं संरक्षक बन जाता है। मनु ने यह स्वीकार किया है कि धर्म का स्वरूप अलग–अलग युग में अलग–अलग हो सकता है तथा महर्षियों ने अलग–अलग युगों के अनुसार धर्म के लक्षण प्रतिपादित किये हैं। ऐसी स्थिति में धर्म की व्याख्या युगानुसार भिन्न–भिन्न हो सकती है। अतः सांसारिक दृष्टि से सर्वोच्च नियामक शक्ति होने के कारण राजा को धर्म की व्याख्या का अधिकार स्वतः प्राप्त हो गया है।[8]

मनु ने धर्म के पांच स्त्रोत स्वीकार किये हैं – वेद, स्मृति, सज्जनों का आचरण, अन्तःकरण और राजाज्ञा। राजा को धर्म की व्याख्या का निर्द्वन्द्व अधिकार प्रदान करके भी मनु ने यह आवश्यक माना है कि राजा के द्वारा धर्म की व्याख्या हेतु निर्धारित किये गये मापदण्ड सार्वभौम नैतिक मूल्यों व मन्तव्यों के अनुकूल हो तथा विद्वानों द्वारा युग विशेष के संदर्भ में की गई धर्म की व्याख्या के अनुरूप भी हों। इस प्रकार मनु ने धर्म को राजकीय शक्ति के प्रयोग के लिए निर्देशक सूत्र के रूप में मान्यता दी है।[9]

धर्म के पांच स्त्रोंतों के अतिरिक्त मनु ने कुछ सार्वभौमिक नैतिक मूल्य एवं आस्थाओं का उल्लेख किया है। मनु ने प्रसंगवश व्यक्त किया है कि युगानुसार धर्म का स्वरूप परिवर्तनशील है अतः सांसारिक दायित्वों के निर्वाह के लिए कुछ नियामक सूत्रों को महत्व दिया जाना चाहिए। एक प्रसंग में मनु ने कहा कि जिसका झूंठ बोलना ही धर्म है और जो हिंसा में रत है वह मनुष्य इस लोक में सुखी होकर उन्नति नहीं कर सकता।[10] इस नकारात्मक व्याख्या से स्पष्ट है कि मनु ने सत्य एवं अहिंसा को समाज के सर्वमान्य या सार्वभौमिक नैतिक मूल्यों के रूप में स्वीकृति प्रदान की है। मनु का आग्रह है कि सांसारिक क्रियाकलापों को सम्पन्न करने से अधिक महत्वपूर्ण सार्वभौमिक नैतिक मूल्य हैं जिन्हें आत्मसात किये बिना सांसारिक दायित्वों का निर्वहन निरर्थक है। मनु ने 'यम' और 'नियम' की व्याख्या द्वारा सामाजिक आचरण के नैतिक पक्ष को उजागर किया है। अक्रूरता, क्षमा, सत्य, अहिंसा, इन्द्रिय–दमन, ध्यान, प्रसन्नता, मधुरता और सरलता आदि गुण 'यम' हैं जो आचरण के सार्वभौमिक सैद्धान्तिक आस्थाओं को व्यक्त करते हैं। वहीं प्रार्थना, दान, तपस्या, स्वाध्याय, ब्रह्मचर्य, व्रत–उपवास, अक्रोध गुरू सेवा आदि नियम है जो आचरण के व्यावहारिक सूत्र हैं। मनु ने स्पष्टतः चेतावनी दी है कि 'यमो' (सर्वाभौमिक नैतिक मूल्यों) को आचरण में लागू किये बिना केवल 'नियमों'

(व्यावहारिक लौकिक आचरण) का पालन करना निरर्थक है।[11] उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि मनु धर्म को राजकीय सत्ता के नियन्त्रण से परे नैतिक सत्ता के रूप में स्वीकार करते हैं तथा राजा भी इन नैतिक मापदण्डों से परे नहीं है। केवल लौकिक नियन्त्रणों से परे हैं।

जिस शक्ति के माध्यम से राजा प्रजा के व्यवहार को नियन्त्रित करते हुए सुव्यवस्था व सुरक्षा प्रदान करने के दायित्व का निवर्हन करता है उसे मनु ने 'दण्ड' की संज्ञा दी है। स्पष्ट किया है कि बिना दण्ड के राजा शक्ति शून्य है। मनु ने दण्ड को राजा की सर्वोपरि सत्ता स्वीकार किया है परन्तु राजा दण्ड का स्वामी नहीं अपितु अभिकर्त्ता मात्र हैं। जो धर्म के सिद्धान्तों एवं विधि की प्रक्रिया के अधीन रहते हुए निश्चित प्रयोजनों के लिए दण्ड का प्रयोग करता हैं अतः राजा भी दण्ड की सम्प्रभु शक्ति के अधीन है। दण्ड शक्ति का अनुचित एवं अन्यायपूर्ण प्रयोग राजा को भी नष्ट कर देगा तथा धर्म के नष्ट होने पर अथवा प्रजा का उचित ढ़ंग से पालन न करने पर राजा को ईश्वरीय प्रकोप से दण्डित होना पड़ेगा तथा अपयश का कारण बनेगा। ग्रन्थ में राजा से अपेक्षा की गई है कि वह अप्राप्त को प्राप्त करें, प्राप्त का संरक्षण करें, संरक्षित का सम्बर्धन करें एवं संवर्धित का सुपात्रों में वितरण करें।[12] साथ ही उससे यह अपेक्षा की गई है कि चारों पुरूषार्थों का प्रयोजन समझे एवं सदैव उनका पालन करें। राजा को अपने कर्त्तव्यपालन एवं उद्देश्य की पूर्ति के लिए अपनी दिनचर्या को विशिष्ट रूप से विभाजित करने का सुझाव दिया गया है। इस प्रकार राजा धर्म का संरक्षक है। धर्म विरूद्ध आचरण करने पर ईश्वरीय शक्ति (दण्ड) राजा को दण्डित कर सकती है। मनुस्मृति में यह स्वीकारोक्ति नहीं है कि राजा के धर्म विरूद्ध आचरण किये जाने पर प्रजा द्वारा राजकीय आदेशों का उल्लंघन किया जा सकेगा। प्रजा द्वारा राजा को चुनौती नहीं दी जा सकती है। मनु ने राज्य शक्ति के अभाव में प्रजा के कल्याण की कल्पना ही नहीं की है।

निष्कर्ष

उपरोक्त विवेचना से स्पष्ट है कि मनुस्मृति में धर्म व राज्य को परस्पर निर्भर माना है। राज्य धर्म पर निर्भर है क्योंकि उसका अस्तित्व धर्म के प्रवर्तन के लिए है तथा धर्म राज्य पर निर्भर है क्योंकि राज्य के भौतिक अवलम्ब के बिना धर्म का सुरक्षित रहना असम्भव है। धर्म मानवीय आचरण के मापदण्ड निर्धारित करता है जो राजा को भी मर्यादित करते हैं। मनु ने राजा पर किसी प्रकार का लौकिक नियन्त्रण स्वीकार नहीं किया है तथा यह प्रतिपादित किया है कि धर्म से पथभ्रष्ट राजा पारलौकिक दृष्टि से अकल्याण एवं अपयश का पात्र बनता है। अतः राजा केवल ईश्वर के प्रति उत्तरदायी है, प्रजा के प्रति नहीं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. मीस जी॰एस॰ – धर्म एण्ड सोसायटी, पृ॰ 8,9
2. ऋग्वेद् 4, 9
3. चतुर्वेदी मधुकर श्याम – प्राचीन भारत में राज्य व्यवस्था, पृष्ठ–4
4. मनुस्मृति, प्रथम अध्याय
5. वही, चतुर्थ अध्याय
6. वही सप्तम् अध्याय
7. वही
8. वही, प्रथम अध्याय
9. चतुर्वेदी मधुकर श्याम, प्रमुख भारतीय राजनीतिक विचारक, पृष्ठ–15
10. मनुस्मृति चतुर्थ अध्याय
11. वही
12. वही अध्याय सप्तम्

❖◆❖